International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 11-11-2019; Accepted: 13-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 34-36

कवितावली: मानव जाति की पीड़ा से छटपटाहट का काव्य

सोनपाल सिंह
शोधकर्त्ता (पी-एच.डी.), हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
आलोचकों ने तुलसी साहित्य को दो चरणों में विभाजित किया है। पहले चरण में आदर्शवादी, महाकाव्यात्मक एवं आध्यात्मिक उन्मेष की रचनाएँ हैं यथा 'रामचरितमानस', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'वैराग्य संदीपनी', एवं 'रामाज्ञा प्रश्नावली' आदि। दूसरे चरण में तुलसीदास आदर्श से यथार्थ की ओर, महाकाव्यात्मक भव्यता से वेणुगीतात्मक (लिरिकल) वैयक्तिकता की ओर मुड़ते हैं जिससे वे अपनी आत्मकथा कहने तथा समाज की निर्भ्रांत आलोचना की नयी जीवन-दृष्टि पाते हैं। 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनय पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली', और 'हनुमानबाहुक' आदि मुक्तक कृतियाँ इसी चरण की देन हैं। इस तरह की रचनाओं में आत्म-संवाद झलकता है। देखने की जरूरत यह है कि उनके 'मैं' अर्थात् कवि के अन्तःकरण का आयतन क्या है? उस 'मैं' का समाज से क्या रिश्ता है? वह 'मैं' कितना सामाजिक है? अन्तर्मुखी होते हुए भी वह आत्मविश्लेषण करने में कितना सक्षम है? इस 'मैं' की प्रकृति और आत्मविस्तार से ही किसी कवि की भक्ति-भावना के सामाजिक सरोकार को परखा जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्र में हमारा सरोकार कवितावली में विन्यस्त सामाजिक यथार्थ से है। कवितावली तुलसीदास की ऐसी रचना है जो अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक भयाभयता से हमें रू-ब-रू कराती है । इन संदर्भों में कवितावली तुलसीदास के समकालीन यथार्थ का एक विश्वसनीय दस्तावेज प्रतीत होती है ।

बीज शब्द- भक्तिआंदोलन, आत्माभिव्यक्ति, वेणुगीतात्मकता, यथार्थ, भयावहता एवं कवितावली आदि ।

प्रस्तावना

भक्तिकाव्य लोक संवेदना की अभिव्यक्ति का काव्य है। यह सामंती संस्कृति के विरुद्ध जन संस्कृति के उत्थान की अखिल भारतीय अभिव्यक्ति है जो दरबारी वातावरण और पुराने काव्यशास्त्र के रीतिवाद से मुक्त है। भक्ति के वृहत् आख्यान की इस परम्परा में तुलसीदास के संदर्भ में परस्पर विरोधी और विवादास्पद अध्ययन देखने को मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण तुलसी को अखिल भारतीय भक्ति संवेदना और तत्कालीन ऐतिहासिक - सामाजिक - राजनीतिक - सांस्कृतिक संदर्भों में न देखकर उन्हें एक खास साँचे में देखने एवं समझने की कोशिश है। यही वजह है कि अधिकांश आलोचकों को कबीर तुलसी से अधिक आधुनिक लगते हैं। अगर सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर तुलसी साहित्य का अध्ययन किया जाए तो वे मध्यकाल के किसी भी कवि से आधुनिक और समकालीन सिद्ध होंगे।

आलोचकों ने तुलसी साहित्य को दो चरणों में विभाजित किया है। पहले चरण में आदर्शवादी, महाकाव्यात्मक एवं आध्यात्मिक उन्मेष की रचनाएँ हैं यथा 'रामचरितमानस', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'वैराग्य संदीपनी', एवं 'रामाज्ञा प्रश्नावली' आदि। दूसरे चरण में तुलसीदास आदर्श से यथार्थ की ओर, महाकाव्यात्मक भव्यता से वेणुगीतात्मक (लिरिकल) वैयक्तिकता की ओर मुड़ते हैं जिससे वे अपनी आत्मकथा कहने तथा समाज की निर्भ्रांत आलोचना की नयी जीवन-दृष्टि पाते हैं। 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनय पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली', और 'हनुमानबाहुक' आदि मुक्तक कृतियाँ इसी चरण की देन हैं।

सामान्यतः राम केन्द्रित महाकाव्यात्मक रचनाओं के बरक्स जिन रचनाओं में तुलसी और उनके आराध्य के बीच कोई नहीं होता, केवल उनकी आत्माभिव्यक्ति होती है उनमें तुलसीदास से हमारा परिचय सहज, पारदर्शी, अंतरंग और नितांत आत्मीय होता है। 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' (उत्तरकाण्ड) एवं 'हनुमानबाहुक' ऐसी ही रचनाएँ हैं जो हमें तुलसी के स्व से रू-ब-रू कराती हैं। इस तरह की रचनाओं में आत्म-संवाद झलकता है। देखने की जरूरत यह है कि उनके 'मैं' अर्थात् कवि के अन्तःकरण का आयतन क्या है? उस 'मैं' का समाज से क्या रिश्ता है? वह 'मैं' कितना सामाजिक है? अन्तर्मुखी होते हुए भी वह आत्मविश्लेषण करने में कितना सक्षम है? इस 'मैं' की प्रकृति और आत्मविस्तार से ही किसी कवि की भक्ति-भावना के सामाजिक सरोकार को परखा जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्र में हमारा सरोकार कवितावली में विन्यस्त सामाजिक यथार्थ से है।

कवितावली में एक ऐसे तुलसी से हमारा साक्षात्कार होता है जिसका बचपन अत्यंत दुःखपूर्ण, घोर गरीबी और दरिद्रता में बीता, जो चार चने के लिए बिलबिलाता फिरता था, जो भीषण अकाल एवं अभावमय समाज से दो-दो हाथ कर रहा था। तुलसी की यह वेदना मध्ययुगीन मनुष्य की नियति, संत्रास एवं विडम्बना के रूप में दिखाई पड़ती है। कभी राम का नाम भर लेने से जिस तुलसी की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता था उसके मन की यह मर्मांतक छटपटाहट कवितावली में जनता का प्रतिरूप बन अभिव्यक्ति पाती है। मानस के उत्तरकांड में तुलसी 'बिनु अन्न दुखी सब लोग मरें' कहते हुए मुगलकालीन अभाव रूपी कलयुग से छटपटा रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ पूरी कवितावली तद्युगीन समाज की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति है। 'किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट…', 'आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की…', 'खेती न किसान को भिकारी को न भीक बलि/बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी…', 'दिन दिन दूनों देख दारिद दिकाल दुख…' ऐसी अनगिनत पंक्तियां कवितावली में मौजूद हैं।

किसी भी साहित्यकार की कृतियाँ तात्कालिक समाज का दर्पण होती हैं। गोस्वामी जी की रचनाएँ अकबर और जहाँगीर के शासन काल की हैं। इतिहासकारों के अनुसार मुगलकाल, स्थिरता, वैभव, सांस्कृतिक विकास और संपन्नता का काल था, लेकिन यह तथ्य सिक्के का एक पहलू है। चूँकि मध्यकाल के पहले परिस्थितियां अत्यंत नाजुक थीं इसलिए थोड़ी बेहतरी भी बड़े परिवर्तन की तरह दिखने लगी थी। संपूर्णता के पटल पर तुलसी का साहित्य मुगलकालीन स्थिरता की अवधारणा को तोड़ता है। अपने समय के हाहाकार, निराशा, अकाल, दैन्य, भुखमरी का चित्रण जिस मार्मिकता के साथ तुलसीदास ने कवितावली में किया है, वह मुगलकालीन वैभव और संपन्नता से इतर दूसरे समाज का ही संकेत है।

विकास और शोषण, भव्यता और गरीबी, पूँजीपति और मजदूर कारीगर इन दोनों का सह-अस्तित्व और गीतशीलता मुगलकालीन भारतीय समाज की विशेषता है। तुलसी की दृष्टि में जो द्वन्द्व पाया जाता है, उसका यही सामाजिक आधार है। इसे ही प्रो. हरबंस मुखिया ने 'आपेक्षित स्थिरता' की संज्ञा दी है। "भूमि की उर्वरता गुजारे के निम्न स्तर तथा स्वतंत्र कृषक उत्पादन के ही कारण भारत के सामाजिक

तथा आर्थिक इतिहास में आपेक्षित स्थिरता थी। कम से कम इतना तो सच है कि तीव्र तनावों के फलस्वरुप उत्पादन के साधनों, तरीकों और संबंधों को पूरे तौर पर बदलने के लिए जोरदार सामाजिक परिवर्तन कभी नहीं हुआ"। [1] असल में तुलसी का संबंध इसी 'आपेक्षित स्थिरता' वाले समाज से है शासन के मुगलिया समन्वय और स्थिरता से बहुत कम है। मुगल काल में किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। करों का तो कोई अंत ही नहीं था। इस संदर्भ में शहाबुद्दीन तालिब ने लिखा है- "हासिल या सीमा शुल्क गुलाब के फूल बेचने वालों से लेकर मिट्टी बेचने वालों तक, महीन लिनेन के बुनकर से लेकर मोटे कपड़े के बुनकर तक प्रत्येक व्यापारियों से वसूला जाता था। यात्रियों, वाणिकों एवं अस्तबल संरक्षकों से उनकी आय का 14 वां हिस्सा या 'जकात' भी वसूल किया जाता था"। [2] किसानों की स्थिति अर्द्ध कृषि दासों के जैसी थी। इसीलिए इतिहासकार प्रो. सतीश चंद्र मध्यकाल की स्थिरता और संपनता के संबंध में कहते हैं- "मुगल काल में जैसा कि होता था आर्थिक विकास और श्रमिक वर्गों का शोषण (जिसे फ्रांसीसी इतिहासकारों ने 'मर्जीमोंक्स' अर्थात् हाशिए पर रहने वाले व्यक्ति कहा है) साथ-साथ चलते हैं"। [3]

मुगलकालीन अर्थव्यवस्था के बिखरने एवं 17 वीं सदी के संकट का सीधा संबंध अभावों, कीमतों में वृद्धि और शोषण से है। साथ ही अकाल (1555-56,1595-95,1613-15) और प्राकृतिक आपदाओं का भी मुगलकालीन अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा। "ये अकाल इतने भयंकर थे कि एक बार उन्होंने सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों एवं मानव गरिमा को समाप्त ही कर दिया, लोगों ने जीवित रहने के लिए अपने बच्चे ही नहीं बेचे, बल्कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का भक्षण भी बड़े पैमाने पर हुआ।" [4] तुलसी साहित्य में इन परिस्थितियों का बार-बार मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है- 'कलि बारहिं-बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।'(रामचरितमानस-7/10), 'ऊंचे नीचे करम, धरम-अधरम करि/पेट को ही पचत बेचत बेटा-बेटकी'(कवितावली-96), 'खेती न किसान को भिकारी को न भीक बलि'(कवितावली-97)।

यही तुलसी का काव्य-बोध है। इस काव्य-बोध में गरीबी और अभाव के हाहाकार की अनुगूंज है। तुलसी की सांस्कृतिक चेतना में दरिद्रता दशानन का अवतार है। जब कोई बालक भूख से 4 चने के लिए बिलबिलाता हो, दर-दर की ठोकरें खाता हो तो उसकी चेतना में गरीबी रावण से भी भयानक होगी ही। संपूर्ण मध्यकाल में तुलसीदास ने विपन्नता और दारिद्र पर जितना लिखा है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। यह कहने में संकोच नहीं कि कवितावली खा-पीकर डकार लेने वालों की कविता नहीं है, अपितु 2 जून की रोटी के लिए श्रमरत और आभावरत लोगों की कविता है। तुलसी की रचनाओं में प्रतिपक्ष के रूप में जो बार-बार कलयुग आता है उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य इसी से जुड़ता है।

1616 से 1619 के मध्य हिन्दुस्तान में प्लेग की महामारी बड़े भयानक रूप में फैली थी। जहाँगीर ने भी अपने संस्मरणों में इस महामारी के संदर्भ में लिखा है- "जब में गुजरात से लौट रहा था, तो मुझे यह समाचार मिला कि आगरा और उसके आसपास प्लेग की बीमारी फैली हुई है। उससे बहुत से लोग मर रहे हैं। यह बीमारी चूहों के द्वारा फैलती है। ... यह देश के दूर-दूर भागों तक फैल गयी है। लोग अपने घर छोड़-छोड़कर भाग गए हैं।" [5] तुलसीदास ने इस महामारी का बहुत ही कारुणिक चित्रण कवितावली में किया है। एक सहृदय कवि, जिसने स्वयं प्लेग की इस महामारी को झेला, उसका वर्णन किसी सम्राट की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक एवं जीवंत है-

अधिभूत वेदन विषम होत भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए तो अनायास कासीवास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज शरीर हौं।। [6]
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं। [7]

मुगलकालीन अर्थव्यवस्था मूलतः 'राजस्व अर्थव्यवस्था' के रूप में जानी जाती है। इस राजस्व वसूली में एक तरफ कृषि संकट को जन्म दिया तो दूसरी तरफ विभिन्न प्रशासनिक अंतर्विरोधों को। प्रो. हबीब का कहना है- "चूंकि करारोपण में कुछ अतिरेक तक बढ़ाए जाने की प्रवृत्ति थी ... इन परिस्थितियों में केवल निम्नवर्ग ही नहीं था जिसे कराधान के बोझ का विशेष प्रभाव सहना पड़ता था, वरन उच्चकुल भी बर्बाद हो जाते थे। इस प्रकार मुगल राजस्व व्यवस्था में श्रेष्ठ कृषि को ध्वंस करने की प्रवृत्ति अंतरनिहित थी"। [8] यह अकारण नहीं था कि तुलसी कवितावली में कह उठते हैं-

खेती न किसान को भिकारी को न भीक बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहै एक एकन सो 'कहां जाय कहा करी'?
दुरित दहन देख तुलसी हहा करी।। [9]

इस 'कहां जाय कहा करी' में जो समाज की परवशता, निर्भरता, असहायता, व्यवसायहीनता और दीनता प्रकट होती है उससे तुलसी हाय-हाय कर रहे हैं। ऐसी ही स्थिति में व्यक्ति की संवेदनाएं एवं नैतिकता समाप्त हो जाती है। पेट की भूख इतनी प्रबल हो जाती है कि व्यक्ति सही गलत देखना छोड़ देता है और तुलसी कह उठते हैं-

ऊंचे नीचे करम, धरम-अधरम करि
पेट को ही पचत बेचत बेटा-बेटकी।
आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की। [10]

समाज की ऐसी दयनीय स्थिति को देखकर ही तुलसीदास राजसत्ता से असंतुष्ट होते हैं और तात्कालिक दरबारी विलासिता पर प्रहार करते हुए कहते हैं- 'बड़े बेबुध दरबार ते, भूमि भूप दरबार...' (दोहावली-393), 'हैं घर-घर बहु भरे सुसाहेब/सूझत सबन आपनौ दाऊं...' (विनय पत्रिका-153), 'राजकरत बिनु काज ही, करें कुचालि कुसाज...' (दोहावली)। अन्ततोगत्वा राजसत्ता से उनकी इस असंतुष्टि की परिणति आदर्श यूटोपिया रामराज्य से मोहभंग में होती है। वह कहते हैं 'संकट समाज असमंजस में रामराज'(कवितावली)। "अपने प्रखर युगबोध और गहरी संवेदलशीलता के चलते जब रचनाकार अपने सामयिक यथार्थ से सीधे और तीखे 'कनफ्रण्टेशन' की भूमि पर उतर आता है तो उसके बने बनाए सपनों की दुर्गति हो जाती है। उसको अपने समय की कड़वी वास्तविकताओं का दारुण अहसास होता है और बदली हुई दृष्टियों से रूढ़ और अप्रासंगिक हो गए अपने सपने को आगे ले जाने का रास्ता उसे नहीं सूझता।" [11]

कवितावली के अंतर्गत कई मायनों में तुलसी के ऐसे आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है, जो सिर्फ तुलसी का ही नहीं. बल्कि तात्कालिक समाज का कटु यथार्थ है। रामचरितमानस में 'पूजिए विप्र सकल गुण हीना। शूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।।' कहने वाला कवि जब समाज के वास्तविक यथार्थ से रू-ब-रू होता है तो सम्पूर्ण कास्ट सिस्टम को चुनौती देता है-

मेरी जाति पांति, न चाहौं काहू की जाति पांति,
मेरे कोऊ कामको, न हों काहू के काम को।... [12]

जहाँ एक ओर मानस में वर्ण व्यवस्था को न मानने वालों को तुलसी चुन-चुनकर गलियाते हैं-

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि, जग जनमै बायस सरीर धरि।
सुर स्रुति निंदक जे अभिमानी, रौरव नरक परहिं ते प्रानी।। [13]

साथ ही मानस में जिस तुलसी को वर्णाश्रम धर्म टूटने की वेदना अत्यधिक व्यथित करती है- 'सब लोग बियोग बिसोक हुए, बरनाश्रम धर्म आचार गए।' उसी व्यक्ति(तुलसीदास) का कवितावली में कहीं-कहीं कास्ट सिस्टम के प्रति तेवर देखने लायक है-

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलाह कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ।।
माँगिके खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एकु न दैबे को दोऊ।। [14]

कास्ट सिस्टम को तगड़ा झटका देती तुलसी की यह घोषणा अनायास नहीं है। यह तुलसी और उनके समाज के भोगे कटु यथार्थ, जिससे तुलसी का साक्षात्कार जीवन के अंतिम समय में होता है, की प्रतिक्रिया है। तुलसी से बेहतर यह कौन जान सकता था कि आर्थिक विपन्नता दुनिया का सबसे बड़ा अभिशाप है। आर्थिक रूप से हीन एवं गरीब व्यक्ति का न कोई आचार होता है और न कोई धर्म। उच्च वर्ण में जन्म लेने से भी उसकी स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। साधन सम्पन्न लोगों की गुलामी ही उसकी नियति है। यह बात मध्यकाल में जितनी सत्य थी, उससे अधिक आज है। आर्थिक स्वाधीनता के बिना शेष सभी अधिकारों का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। धन के बिना कोई धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। सम्पत्ति के धरातल पर निर्मित किसी भी समाज में धन के बिना प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। तुलसी यह बात समझते थे-

दमदुर्गम, दान, दया, मख, कर्म, सुधर्म अधीन सवै धन को।
तप, तीरथ, साधन, जोग, विरागसों होई, नहीं दृढ़ता तन को।। [15]

संदर्भ सूची

1. झा कमलानंद, तुलसीदास का काव्य-विवेक और मर्यादाबोध, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-52
2. वही, पृष्ठ-53
3. वही, पृष्ठ-54
4. अकबरनामा(द्वि. सिंह, कुँवरपाल(सं.) भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-290)
5. तुजुक-ए-जहाँगीरी(द्वि. सिंह, कुँवरपाल(सं.) भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-292)
6. कवितावली-166
7. कवितावली-167
8. कुमार मधुप, विनयपत्रिका और निराला के विनयगीत, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-137
9. कवितावली-97
10. कवितावली-96
11. झा कमलानंद, तुलसीदास का काव्य-विवेक और मर्यादाबोध, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-104
12. कवितावली-107
13. रामचरितमानस(द्वि. झा कमलानंद, तुलसीदास का काव्य-विवेक और मर्यादाबोध, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-103)
14. कवितावली-106
15. कवितावली-87